** अध्याय नं. 7 **

- धूमिल के काव्य में आर्थिक परिप्रेक्ष्य -

"अब हर चीज का एक नाम है
लोगों की सुविधा के लिए
बनिया सच्चाई है
यह महंगाई हैं
जिसने बाजार को चकमा दिया है।" (।)

शहरी जीवन की ऊब, घुटन, शोर और अमानवीय जीवन की स्थितियों, मजबूर, बेरोजगार, और दयनीयता के शिकार लोगों को इस सडी गली अर्थ व्यवस्था पर प्रतिक्रियात्मक स्वर देने को कहते हैं। जहां हवा काली है, जीने का जोखीम है, सपनों का वयस्क लोकतंत्र है। आदमी होने का स्वाद है।

शहरी जीवन का यथार्थ भी धूमिल की कविता में अपने विविध पक्षों और रुपों में अंतर्विरोधों और विसंगतियों के साथ उभरकर आया है। शहरी यथार्थ का चित्रण धूमिल की कविता में ग्रामीण यथार्थ से कम नहीं है।

पूंजीवाद के विकास के साथ शहरी समाज में अर्थिक वैषम्य तीव्र से तीव्रतर होता चला गया है। एक ओर मजदूर है जो दिन-भर परिश्रम करके दो वक्त की रोटी और तन ढंकने के लिए वस्त्र नहीं जुटा पाते।

तंग बदबूदार सीलन भरी कोठरियों में या झोपडियों में रहते हुए तरह-तरह की बीमारियों से ग्रस्त होकर असमय में मौत के मुँह में चले जाते हैं। दूसरी ओर पूँजीपति, जमींदार, व्यापारी, राजनीतिज्ञ, उच्चाधिकारी है जो मेहनतकश जनता से मेहनत का सारा फल हडपकर "ऐश" कर रहें है। इन दोनों के बीच है - उच्चवर्ग की सुविधा का शास्त्रोक्त प्रचारक प्रभु सेवक मध्यवर्ग, जो टूटकर बिखर चुका है।

"अक्सर तुम्हें देखा है
(सोचा है देख देख)
अन्तर्मन तुम्हारा एक खडियें का टुकडा है।" (2)

पूँजीवादी व्यवस्था के पतनशील चरित्र ने अनेकानेक मानवीय समस्याओं को जन्म दिया। शोषण और दमन पर आधारित यह व्यवस्था ऐसी है कि, तुम्हें भी उसी रासतें पर लाती है, जहाँ भूख उस वहशी को पालतू बनाती हैं।

धूमिल में नयी सामयिक व्यवस्था के निर्माण और संगठन की भूमिका जीवन दर्शन के साथ प्रस्तुत करने की अपूर्व क्षमता थी। कानून, धर्म, नैतिकता, कला, साहित्य, संस्कृति, सभी शोषक वर्ग के संकतों पर चलते हैं और उसी के हित सिध्द करते हैं। वर्गाश्रित समाज व्यवस्था ही तमाम कुत्साओं के लिए उत्तरदायी है।

"वे वकीलहै वैज्ञानिक है
अध्यापक है। नेता हैं। दार्शनिक है
यानि की
कानून की भाषा बोलता हुआ
अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है।" (3)

भूख ने उन्हें जानवर कर दिया है। संशय ने उन्हें आग्रहों से भर दिया है। इसलिए अब -

भूख और भूख की आड में
चबाई गई चीजों का अक्स
उनके दाँतों पर ढूंढना
बेकार है।" (4)

शहर का व्यक्ति बेदर्द मौकापरस्त है। उसकी स्वार्थपरता ने मानवीयता अनुभाव को कुचल दिया है। आज के शहरी जीवन व्यक्ति की अमानवीयता तथा उसकी पाशविकता का शिकार बनी एक पागलिनी का चित्र धूमिल की कविता में देखने को मिलता हैं।

"शहर की समूची पशुता के खिलाफ
गलियों में नंगी घूमती हुई
पागल औरत के "गाभीन पेट" की तरह
सडक के पिछले हिस्से में
छाया रहेगा पीला अंधकार।" (5)

यहाँ जीवन की गहरी मार्मिक अभिव्यक्ति हैं। प्रगतिशील साहित्यकार होने के नाते धूमिल अपने कर्म को गंभीर और उत्तरदायित्व पूर्ण सामाजिक कर्म मानते थे।

अस्तित्व का यह संघर्ष, व्यक्ति के रुप में मात्र धूमिल का नहीं बीसवी शताब्दी की सृजनशील शोषित और उत्पीडित मेहनतकश जनता का अपना इतिहास है। इन जिम्मेदार रचनाकार की तरह वह समाज की पशु प्रवृत्तियों पर सांघातिक चोट करता हैं और कविता की भाषा में अपनी सहज आत्मीयता से इन छद्मवेशी पशु-आचरणों के पीछे छिपे सामाजिक तथ्यों का उद्‌घाटन करता हैं।

"मेरी कविताएं
अंधेरा और कीचड और गोश्त की
खुराक पर जिंदा है।" (6)

लोगों को विश्वास था कि, आजादी के बाद देश में एक नयी चेतना आएगी। नव जागरण होगा। गांधीवाद और रामराज्य की स्थापना का नारा दिया गया। सुख-सुविधा के सपने जगायें। राजनेता तरह-तरह के लुभावने आश्वासन देते रहें और भाषण से पेट भरते रहें। युग बदला, परिस्थितियाँ बदली, साम्राज्यवाद का पतन हुआ। लेकिन राजनीतिज्ञों ने कुर्सी के "हाते" में षड्यंत्र का पाशा खेलना नहीं छोडा।

परिणामतः अमीर-गरीब की खाई पटने की जगह और बढने लगी और बौखलाकर हुए भेंढक कुएं की कई लगी दीवाल पर चढ गए और सूरज को धिक्कारने लगे -झूठ है आदमी, देश, आजादी।

"इस शहर
या उस शहर में
यानी कि मेरे या तुम्हारे शहर में
चंद चालाक लोगों ने
(जिनकी नर-भक्षी जीभ ने)
पसीने का स्वाद चख लिया है
बहस के लिए
भूख की जगह
अपनी ही अंगुलियाँ
चबायेगा।" (7)

आज आदमी, आदमी होने का चाहे भले ही स्वांग रच रहा हो, लेकिन बेझिझक शहर अपने जनून को अहिस्ता-अहिस्ता शीशे और रोशनी में बदल रहा है। धूमिल इस बात को बडे गर्व से स्वीकार करते थे कि, सफल जीवन जीने के लिए सडक के यातायात चिन्हों को समझने की जरुरत हैं।

जहां हमदर्दी चेहरों से आंसू और चमडा बटोरती हो, मुंह में जीभ डालकर बोलनेवाला प्यारा पडोसी देशी दाँतो की दोस्ती से डर रहा हो, जहां रोजी-रोटी के नामपर जगह-जगह जहर फेंका जा रहा हो और जहाँ एक दूसरे से नफरत करते हो। कैसे संभव है कि, रंगों की मुहर तोडकर सूरज प्यार व न्याय की पूरी दुनिया के सामने रखकर देख सकेगा। शायद इसीलिए वे बहुत सहज होना चाहते थे। सही जीवन जीने की लालसा में वहाँ सभी चीजों के बदलने का विचार बदलकर चुपचाप कार्रवाई देखते हैं और उन्हें लगता हैं कि, कहीं कुछ नहीं बदला है।

धूमिल की कविताओं में समाज का अर्थिक ढांचा उभरा है। उनकी सहानुभूति भिखारी, रोजगारी युवकों के साथ मोचीराम, हलजोत्ते, मजदूर, लुहार, नाई और मुसहर के साथ है। अर्थात शोषित वर्ग के प्रति पूरी सहानुभूति और शोषक के प्रति घृणा का भाव मुखर है।

"मोचीराम" का "मोची" शोषित वर्ग का प्रतीक हैं। अपमानीत दलित वर्ग की ओर से उच्च वर्गीय आइने में झाँकता हैं, जिससे की उच्च वर्ग अपने शोषित चेहरे को देखकर अपने को पहचान सके।

मोचीराम का बदलाव समाज में व्याप्त अंतर्विरोधों पर गहरी चोट है। मोचीराम के सामने समाज के तरह-तरह के लोग आते हैं, जो उसके लिए जूते के समान है। वह अपने कार्य के प्रति अध्यवसायी है, ईमानदार है तभी तो वह कहता हैं -

"मेरी निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बडा है
मेरे लिए हर आदमी एक जोडी जूता हैं
जो मेरे सामने
मरम्मत के लिए खडा है।" (8)

और

"आजकल
कोई आदमी जूते की नाप से
बाहर नहीं है
फिर भी मुझे ख्याल रहता है
कि पेशेवर हाथों और फटे हुए जूतों के बीच
कहीं न कहीं एक अदद आदमी है।" (9)

मोचीराम के वक्तव्य में तीखापन है। उसकी ऊक्तियाँ असरदार है- देखिए -

"जूते
और पेशे के बीच
कहीं-न-कहीं एक अदद आदमी है
जिस पर टांके पडते हैं
तो जूते से झांकती हुई अंगुली की चोट
छाती पर

हथौडे की तरह सहता हैं।" (10)

मगर सही जीवन जीने के लिए "वह" इसे ही सही तर्क नहीं मानता और यही कारण है कि, समाज और राजनीति की आड में आदमी को धोखा देनेवालों को वह रामनामी बेचकर या रण्डियों की दलाली करके रोजी कमाने में कोई फर्क नहीं मानता हैं।

"मोचीराम" का वह अंश और महत्वपूर्ण बन पडा है, जहाँ धूमिल स्वयं मोचीराम के रुप में समाज के दरिन्दों को धिक्कारते हैं -

"कैसे आदमी हो
अपनी जाति पर थूकते हो।" (11)

आजादी के बाद की सचाई और उसके नंगे रुप को रखकर वे दर्शाना चाहते थे कि, राजनीतिज्ञों की कुर्सी की जोड-तोड नीति, खोखले नारे, झूठे भाषणों और उनके घटित कुचक्र से देश की जनता किस तरह शोषित और प्रभावित हैं। यह कारण है कि वे सीधे व्यवस्था पर चोट करते हैं।

"दरअसल अपने यहां जनतंत्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है।" (12)

"मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद
माल गोदाम में लटकी हुई
उन बाल्टियों की तरह है जिसपर "आग" लिखा है
और उसमें बालू और पानी भरा है।" (13)

"अपने यहां संसद
तेल की वह घानी है
जिसमें आधा तेल है
और आधा पानी है।" (14)

"पटकथा" जनतंत्र और संसदीय शासन पध्दति की विफलता का ही चित्रीकरण नहीं है, बल्कि जन-जीवन में व्याप्त असंतोष, अनैतिकता, भ्रष्टाचार, चोर बाजारी, स्वार्थपरता का प्रस्तुतीकरण भी है। धूमिल का स्वर वस्तुतः जनवादी है। उनके शब्दों में जनतंत्रीय व्यवस्था का शोषक रुप देखिए -

"मुझे लगा - आवाज
जैसे किसी जलते हुए कुएं से
आ रही है
एक अजीब सी-प्यार भरी गुर्राहट
जैसे कोई मादा भेडिया
अपने छौने को दूध पिला रही है और
साथ ही किसी मेमने का सिर चबा रही है।" (15)

जनतंत्र भारतीय व्यवस्था का प्रतीकात्मक अर्थ देता हैं। इसीतरह अन्य शब्दों का भी अपना-अपना खास अभिप्राय है। धूमिल को लगता है कि, आजादी के बाद इन वर्षों में जो कुछ हुआ है, वह अमानवीय है -

"आजादी इस दरिद्र परिवार की बीस साल "बिटियाँ"
मासिक धर्म में डूबे हुए **क्वाँरेपन** की आग से
अन्धे अतीत और **लँगडे** भविष्य की
चिलम भर रही है।" (16)

धूमिल अर्थिक अभावों को मनुष्य के पतन का मुख्य कारण मानते हैं। अर्थिक अभावों से लडते हिंदुस्थान का चित्र उनकी रचनाओं में देखा जा सकता हैं।

विषमता के कारणों को जानने तक ही उनकी जिज्ञासा नहीं रही, बल्कि उन कारणों को समाप्त करने के लिए संघर्ष का आवाहन भी उनकी कविता में हैं।

शहर और गाँव में आर्थिक विषमता के कारण अलग-अलग है। परंतु शोषकों के चेहरे सर्वत्र एक जैसे है। अर्थिक चिंतन की दृष्टि से उनकी प्रमुख कविताएँ है - "अकाल दर्शन", "मोचीराम", "प्रौढशिक्षा", "कुत्ता", "भाषा की रात", "न्यू गरीब हिन्दू होटल", "ताजा खबर", "रोटीयों का शहर", "हरित क्रांति", "रोटी और संसद", "दिनचर्या", तथा "गाँव में कीर्तन" इन कविताओंके माध्यम से धूमिल ने अपनी आर्थिक चेतना को स्पष्ट किया है।

"अकाल दर्शन" कविता में धूमिल ने यह प्रश्न किया है कि, भूख कौन उपजाता है और इसका उत्तर ढूंढने का प्रयास किया है। नेताओं के अनुसार भूख का कारण बढती हुई जनसंख्या है। धूमिल के अनुसार भूख बढने का कारण जनता की जडता और उदासीनता है ज्योंकि उन्हें यथास्थितिवाद की पक्षधर ही नहीं बनाती बल्कि शोषण को अपना भाग्य मान्ने के लिए विवश करती हैं।

धूमिल वितृष्णापूर्वक कहते हैं कि, मेरे देश के भूखे नंगे लोग "अकाल को सोहर' की तरह गा रहें है। और वे इतने मूर्ख है कि, उस व्यवस्था का समर्थन भी करते हैं, जिसने उन्हें भूखों मरने को विवश किया है। क्रांति को अबोध बच्चे की हाथ की जूझो घोषित करनेवाले धूमिल आम आदमी से रुष्ट नजर आते हैं।

"मोचीराम" कविता में कवि एक मोची की आँख से अपने चारों ओर की दुनिया को देख रहा है। "मोचीराम" को लगता हैं कि, सारी जिंदगी बिना किसी लक्ष्य के गुजार देना व्यर्थ है क्योंकिं -

"और बाबूजी! असल बात तो यह है कि, जिंदा रहने के पीछे
अगर सही तर्क नहीं है
तो रामनामी बेचकर या रण्डियों की
दलाली करके रोजी कमाने में
कोई फर्क नहीं है।" (17)

"मोचीराम" एक संवेदनशील व्यक्ति के रुप में चित्रित हैं जो कि, अपने व्यवसाय की इज्जत बचाता हुआ गरीब की छलनी हुई जूती को प्यार से संवारता हैं। "मोचीराम" का जीवन दर्शन बिलकुल स्पष्ट है।

"मोचीराम" अंत में दार्शनिक भाषा में कहता हैं कि, जब जिंदगी की आग सबको समान रुप से जलाती हैं तो उसकी अभिव्यक्ति का अधिकार भी सभी को है। अपने दुःख को चीख का रुप दे देता हैं। दूसरा चुपचाप सहता हुआ भीतर ही भीतर उबलता रहता हैं। भविष्य के निर्माण में अभिव्यक्त आक्रोश और रुंधा हुआ आक्रोश दोनों ही सहायक होते हैं।

"प्रौढ शिक्षा" कविता धूमिल की एक प्रौढ कविता हैं, जिसमें गांव में गरीबी और शोषण से लडने के लिए शिक्षा की अनिवार्यता पर बल दिया गया है। सदा ही अन्नदाता, पृथ्वीपुत्र जैसे गरिमामय शब्दों के भुलावे में डाल कर भूखा नंगा रहने को विवश किया गया है। जहाँ पर आजादी के बाद के नेताओं की भीड अपने लिए विलासिताएं जुटाने में लगी है। वहीं पर किसान की स्थिति बदतर होती जा रही है। धूमिल किसान से पूछता हैं -

"क्या तुमने कभी सोचा है कि तुम्हारा
यह जो बुरा हाल है
उसकी वजह क्या है?" (18)

इस प्रश्न का उत्तर खोजते हुए धूमिल इस निष्कर्ष पर पहुँचता हैं कि अशिक्षा ही किसान को असहाय बनाती हैं। वह गांव के लोगों से कहता हैं। -

"इसलिए मैं फिर कहता हूँ कि हर हाथ में
गीली मिट्टी की तरह हां-हां मत करो
तनो
अकडो
अमरबेलि की तरह मत जियो
जड पकडो।" (19)

धूमिलने "प्रौढ शिक्षा" कविता में किसान का अशिक्षित होना उसके पिछडेपन और शोषित होने का मूल कारण मानते हैं।

"कुत्ता" कविता में भूख इन्सान को बहुत नीचे गिरा सकती हैं। जिस प्रकार कुत्ते का पालतुपन उसकी स्वामीभक्ति मूलतः उसकी भूख का परिणाम है। उसी प्रकार मनुष्य भी भूख के आगे विवश होकर अन्याय सहने को अपना भाग्य मान लेता हैं।

"कल सुनना मुझे" संग्रह की लघु कविता "रोटी और संसद" है। प्रस्तुत कविता में धूमिल ने यह स्पष्ट किया है कि, हमारे देश में आर्थिक विषमता का मूल कारण वे लोग है जो कि, छल-कपट द्वारा लोगों के पसीने की कमाई को निगल जाते हैं। पूँजीपति का पैसा संसद के मुँहपर ताला लगा देता हैं। देश का नेतृत्व भ्रष्ट है तथा पूँजीपति वर्ग को शोषण की खुली छूट मिली है।

"न्यू गरीब हिन्दू होटल" में बर्तन मांजनेवाला घीसा ग्राहकों को खाना परोसनेवाला नन्हा बालक और खाना बनानेवाला "महाराज" सभी शोषित वर्ग से है। धूमिल देखता हैं कि, नन्हें बच्चे से दिनरात काम लिया जाता हैं और लिखते हैं -

"प्लेट साफ करते हुए
लडके का सोना
कानूनी है कानूनी है।" (20)

"ताजा खबर" कविता में किसान की दिन - प्रतिदिन गिरती आर्थिक दशा का चित्रण हुआ है। खेतों में उपज कम हो गई और किसान की निराशा बढ गई है। टूटते ग्रामीण परिवारों का कारण आर्थिक है क्योंकि -

"मगर आज जैसे सब कुछ उलट गया है
कभी न थकनेवाले तीन भाई
खेतों से फसलों की लोथ लेकर लौटे है

और खटिया पर लहास हो गए है
पहली बार मैं पढता हूँ उनके चेहरों पर
की झुर्रियों में खेत में हलाल होने का हाल।" (21)

"रोटीयों का शहर" में कवि ने भूखी मरती जनता और संसद में बैठकर कागजी कार्यवाही करते नेताओं का व्यंग्यपूर्ण चित्रण खींचा है। "हरित क्रांति" कविता में कवि स्पष्ट करता हैं कि, इस क्रांति का लाभ आम किसान को नहीं पहुँचा है। खेत में खडा आदमी मिट्टी हो गया है और दुकान में बैठा आदमी सोना बन गया है।

धूमिल की कविताओं में हमारे समाज का आर्थिक ढांचा ही उभरा है। धूमिल की सहानुभूति बेकार युवक के साथ है, मोचीराम के साथ है, खेत में मिट्टी बनते किसान के साथ है। शोषक वर्ग के प्रति आक्रोश एवं घृणा का भाव मुखर है। आम आदमी की आर्थिक दशा को सुधारे बिना समाज का सुधार संभव नहीं।

जहाँ-जहाँ और जब-जब आर्थिक दृष्टि से विषम सामाजिक वर्ग अस्तित्व में आते हैं, वहाँ साम्यवादी विचारधारा की ओर लाखों-करोडों लोगों में आकर्षण उत्पन्न हुआ है।

समाज में व्याप्त किसी भी प्रकार की विषमता के प्रति उद्वेग की भावना किसी भी साधारण समझदार की स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती हैं। यदि कवि समाज के श्रमजीवी वर्ग से घनिष्ट था तो क्या कारण है कि, उक्त श्रमर्जावियों की सत्ता के पक्षपाती दर्शन की ओर उसका अधिक झुकाव नहीं रहा।

साम्यवाद भला ही आर्थिक समता लाने के लिए उत्पादक साधनोंपर श्रमिकों का स्वामित्व और उस स्वामित्व की स्थापना के लिए शासन का अधिकार श्रमिकोंके हाथों में सौंपने की व्यवस्था में विश्वासी हो।

अंधे लोगों के दो वर्ग समाज में देखे जा सकते हैं। इनमें पहला वर्ग (जिसे चाहे तो बुध्दिजीवी कह लो) जीवन में सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त करने की तरकीबें जानता है और दूसरा वर्ग इस बारें में अज्ञानी होता हैं। परिणामतः यह दूसरा वर्ग जिसे समझ की सुविधा के लिए श्रमिक वर्ग कह लो, जीवन में सभी प्रकार की सुविधाएँ भोगता हैं, दुख उठाता हैं। हर तरह का अन्याय सहता हैं, क्योंकि उसे अपनी भूख की समस्या से जूझना पडता हैं। जीवन में होनेवाले अन्यायों, अत्याचारों के विरोध में चीखने-चिल्लाने वाले हाय-तोबा मचानेवाले पहले वर्ग में और उन्हीं अन्यायों अत्याचारों को सहते हुए "एक समझदार चुप्पी साधने" वाले दूसरे वर्ग में कोई अंतर नहीं है। इनसे समाज का वर्तमान प्रभावित होता हैं और न ही भविष्य के प्रभावित होने की संभावना उत्पन्न होती हैं।

धूमिल किसानों की विवशताओं से जितना परिचित था, उतना ही उनकी विशेषताओं से। उनकी

परिश्रम शीलता और पशुओं की हरकतों से आनेवाले प्राकृतिक संकट को पहले ही समझने की शक्ति की वह सराहना करता हैं। इसलिए कवि जिन शब्दों में उनकी जो विशेषताएँ कहता हैं, वह निरर्थक नहीं लगता। वह लिखता हैं -

"यद्यपि यह सही है कि सूरज
तुम्हारी जेब घडी है
तुम्हारी पसलियों पर
मौसम की लटकती हुई जंजीर
हवा में हिलती हैं और
पशुओं की हरकतों से
तुम्हें आनेवाले खतरों की गंध
मिलती हैं
लेकिन इतना ही काफी नहीं है।" (22)

किसान की अशिक्षा और निर्धनता की जड में शोषकों के षड्यंत्र है। गांव से शहर तक बिखरे यह शोषक स्वार्थी है। फिर भी एक बातपर सहमत है कि, किसान ही इनका शिकार है। "मुक्ति का रास्ता" कविता में धूमिल गांव में जमींदारों द्वारा किसानों पर किये जानेवाले अत्याचारों का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि,

"क्या तुम्हें याद है वह दिन? वह घटना
मारे गये थे पुरजन कटे हुए खेत की
मेंड पर लोथें गिरी थी खूनी खंखार की तरह
जोतदार का सिर खेत में पडा था। अनाज
ढोया जा रहा था सुरक्षित मुकाम पर।" (23)

जोतदार की हत्या और फसलों को जबर्दस्ती जमींदारों के द्वारा छीना जाना, गांव में कोई नई बात नहीं है। पुलिस भी इन्हीं लोगों की तरह गरीब किसान का रक्त ही चूसती हैं, इनसे मिली रहती हैं। हत्याकाण्ड के पश्चात आनेवाली पुलिस क्या करती हैं, इसका मार्मिक चित्र धूमिल प्रस्तुत करते हैं। -

"इसके बाद आये थे अपराध के कानूनी दलाल
एडियां बजाते हुए। किरचों की मुहर ने
चेहरों को दागी किया था। लाशों की गिनती
फिर आगजनी, लूट। लेकिन क्या था

आततायियों के हाथ। नफरत की आंच ने
चन्द खाली झोपडों को राख किया था।" (24)

सत्ता की दलाली करनेवाले बुध्दिजीवी आम आदमी की अक्लपर मिट्टी डालते हैं और उन्हें दुविधाओं में फंसाते हैं। कवि आक्रोश युक्त वाणी में पूछता हैं कि, जनता क्या कुसूर है।

"धुंधुआती आँखें पढना चाहती हैं आजादी का घोषणा पत्र
किसने चुराई है रोशनी
अन्न और वस्त्र कहाँ है तुम्हारे लिए?
कहां है मेहनतपर जीने का कोल
किसने काटे है हाथ
तुम लगातार सोचते हो - अकेलापन
अब की कवच है।" (25)

धूमिल ने जब "मोचीराम" कविता लिखी थी उन दिनों में प्रगतिवाद का साम्यवाद के प्रति समर्पित होने का आकर्षण समाप्त हो चुका था। जहाँ-जहाँ और जब-जब आर्थिक दृष्टि से विषम सामाजिक वर्ग अस्तित्व में आते रहें। वहाँ साम्यवादी विचारधारा की ओर लाखों करोडों लोगों में आकर्षण भी उत्पन्न हुआ।

समाज में व्याप्त किसी भी प्रकार की विषमता के प्रति उद्वेग की भावना किसी भी साधारण समझदार की स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती हैं। वर्गों-वर्गों में देखी जानेवाली विषमताओं की बात करें, तो उसे अनिवार्यतः मार्क्सवादी चिंतन से प्रभावित करना कम हास्यास्पद नहीं होता।

मार्क्स विचारों का चिंतन मूलतः औद्योगिकी में प्रगत राष्ट्रों के लिए है। उसमें श्रमिकों का मतलब बहुत हद तक फल कारखानों में काम करनेवाले से संबंधित हैं। "पटकथा" में भी कवि ने एक ऐसे मोची का चित्र प्रस्तुत किया है जो चौक से गुजरते हुए देहाती को बडे प्यार से बुलाकर जूतों की मरम्मत के नाम पर रबर के **तल्ले** में लोहे की तीन दर्जन फुल्लियां ठोंकता हैं और डाँट-डपट कर पैसा वसूल करता हैं। उसके उस व्यवहार में शहरीवासियों की चालाकी और निर्दयता का समान्वित रुप देखने को मिलता हैं।

केवल "मोचीराम" को ही जूते देखकर सामाजिक वर्गभेद की भावना सताती हैं, यह बात नहीं। जूतों को देखकर एक कुत्ता क्या सोचता हैं? देखिए -

"उसकी (कुत्ते की) सही जगह तुम्हारें पैरों के पास है

मगर तुम्हारे जूतों में
उसकी कोई दिलचस्पी नहीं है
जूते की बनावट नहीं देखती
वहाँ वह सिर्फ बित्ता भर
मरा हुआ चाम देखती हैं
और तुम्हारे पैरों से बाहर आने तक
उसका इंतजार करती हैं।" (26)

यदि कवि समाज के श्रमजीवी वर्ग से घनिष्ट था तो क्या कारण है कि उक्त श्रमजीवियों की सत्ता के पक्षपाती दर्शन की ओर उसका अधिक झुकाव नहीं रहा। वैसे भी जनतंत्र राजनीतिक व्यवस्था है और साम्यवाद आर्थिक व्यवस्था है।

साम्यवाद भला ही आर्थिक समता लाने के लिए उत्पादक साधनोंपर श्रमिकोंका स्वामित्व और उस स्वामित्व की स्थापना के लिए शासन का अधिकार श्रमिकोंके हाथों में सौंपने की व्यवस्था में विश्वासी हो। परंतु उसका लक्ष्य दंडहीन (शासक और शासितों के वर्ग से रहित) समाज रचना की स्थिति में पहुँचना है।

जिस देश की जनता अपनी वर्तमान विषमता की दलदल से बाहर आने के लिए उक्त दर्शन को साधन मानती हो उसकी दृष्टि में उसके प्रति नितांत अलग-अलग धारणाएँ हो सकती हैं।

आज राष्ट्रों की विकसित, विकासशील श्रेणियाँ बन गई है, तो हर स्थितिवाले राष्ट्र की जनता में मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति विकर्षण, अनाकर्षण, और आकर्षण की भावना हो सकती हैं।

"पेशेवर होथों और फटे हुए जुतों" के बीच एक आदमी का अस्तित्व अवश्य होता हैं। उसी आदमी का उसे हमेशा खयाल रहता हैं। उसी आदमी के साथ वह संवेदनशील है -

"फिर भी मुझे ख्याल रहता हैं
कि पेशेवर हाथों और फटे हुए जुतों के बीच
कही न कहीं एक अदद आदमी है
जो जूते से झाँकती हुई अंगुली की चोट छाती पर
हथौडे की तरह सहता हैं।" (27)

वह अपने ग्राहकों की अपनी-अपनी "शक्ल" और अपनी-अपनी शैली का वर्णन भी जूतों की शक्ल और शैली से मिलाकर करता हैं। "चकत्तियों की थैली" जैसा जूता मरम्मत के लिए आनेवाले ग्राहक का चेहरा "चेचक का चुगा" हुआ होता हैं। अपनी जाति का यहां सीधा अर्थ तो दरिद्र वर्ग से ही संबंध

माना जा सकता हैं। गरीबों के जूतों की मरम्मत में शोषित अभावग्रस्त दलित पीडित वर्ग के प्रतिनिधि के रुप में सामने आता हैं।

"एक आवाज आती हैं - कैसे आदमी हो
अपनी जाति पर थूकते हो
आप यकीन करें उस समय
मैं चकतियों की जगह आँखे टाँकता हूँ
और पेशे में पडे हुए आदमी को
बडी मुश्किल से निबाहता हूँ।" (28)

धूमिल का "मोचीराम" अपने व्यवहार को उचित ठहराने के लिए तर्क देता हैं। और यही तर्क उसकी दृष्टि में सही है और इसी तर्कपर चलनेवाली उसकी जिंदगी भी सही है। तर्क यही हैं कि, 'जैसा दाम वैसा काम' कोई अनैतिकता नहीं है। अपने इसी व्यवहार को तर्क सम्मत ठहराते हुए कहते हैं।-

"और बाबूजी! असल बात तो यह है कि, जिंदा रहने के पीछे
अगर सही तर्क नहीं है
तो रामनामी बेचकर या रंडियों की
दलाली करके रोजी कमाने में
कोई फर्क नहीं है।" (29)

एक तथाकथित छोटे समझे जानेवाले पेशे से जुडे और तथाकथित छोटी समझे जानेवाली जाति से संबंधिति व्यक्ति को जीवन के सुख-दुख एक से ही भोगने पडते हैं। बसंत का उल्हास दोनों को एक-सा ही प्रभावित करता हैं। यदि अंतर ही कोई हो सकता है तो इस ऋतु का सौंदर्य बोध और उस बोध की अभिव्यक्ति अलग हो सकती हैं। हर कोई अपने पेशे से प्रभावित होकर उक्त बोध को ग्रहण करता हैं और अनुभव को अभिव्यक्ति देता हैं। इस सिध्दांत को कवि निम्न पंक्तियों में व्यक्त करता हैं।

"अब आप इस बसंत को ही लो
यह दिन को ताँत की तरह तानता हैं
पेडों पर लाल-लाल पत्तों के हजारों सुखतुल्ले
धूंप में सीझने के लिए
लटकाता हैं।" (30)

धूमिल की वर्गवादी चेतना की अपेक्षा वर्ग विहीन सामाजिक कल्पना प्रस्फुटित होती हैं।

सामाजिक वर्गों की अस्वीकृति ध्वनित होती हैं। वह भी अर्थिक समानता के बल पर वर्गविहीन समाज निर्नाण की कल्पना से अधिक ठोस आधार पर सामाजिक समता की कल्पना इससे प्रस्तुत होती हैं।

किसी कुल-विशेष में जन्म लेने का अधिकार व्यक्ति के हाथ में तो नहीं होता। कोई व्यक्ति अपनी इच्छा से जनक-जननी चुन नहीं सकता। परंतु वह अपना जीवन-दर्शन तो स्वतः निर्माण कर सक्ता हैं। अपनी योग्यता के बलपर आत्मविकास कर सकता हैं।

अर्थ और भौतिक सुख-सुविधा भोग में तो तथाकथित छोटा वर्ग संभ्रात वर्ग की बराबरी के अधिकार के लिए संघर्ष करता रहा। परंतु धूमिल का मोचीराम संभवतः पहला व्यक्ति हैं जो अनुभूति और अभिव्यक्ति की प्रतीक भाषा पर सभी का समान अधिकार विश्वास प्रकट करता हैं।

"जब कि असलियत यह है कि, आग
सबको जलाती हैं सचाई
सबसे होकर गुजरती है।" (31)

समाज में दो वर्ग होते हैं इनमें से पहला जीवन की सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त करने की तरकीबें जानता हैं, तो दूसरा इस बारें में बिलकुल अज्ञानी रहता हैं। परिणामतः यह दूसरा वर्ग जिसे समझ की सुविधा के लिए श्रमिक वर्ग कह लो, जीवन में सभी प्रकार की सुविधाएँ भोगता हैं। दुख उठाता हैं, हर तरह का अन्याय सहता हैं, क्योंकि, उसे अपनी भूख की समस्या से जूझना पडता हैं।

इसका अर्थ यह तो नहीं होता कि, दोनों वर्गों के जीवन की उपलब्धियों में बहुत बडा अंतर है। जीवन में होनेवाले अन्यायों, अत्याचारों के विरोध में चीखने - चिल्लानेवाले, हाय-तोबा, मचानेवाले पहले वर्न में और उन्हीं अन्याय-अत्याचारों को सहते हुए एक समझदार चुप्पी साधने वो दूसरे वर्ग में कोई अंतर नहीं होता। इनसे न समाज का वर्तमान प्रभावित होता हैं और न ही भविष्य के प्रभावित होने की संभावना उत्पन्न होती हैं।

यदि हिंसा के तथाकथित प्रगतिवादी चिंतन द्वारा समर्थित समझा जाय तो उसके बारें में धूमिल ने "कविता - श्रीकाकुलम्" कविता में अपने विचार स्पष्ट किये है। वह किसी तरह से हिंसा का समर्थक नहीं माना जा सकता। उसका केवल यह विश्वास है कि, -

"एक आदमी
दूसरे आदमी की गरदन
धड से
अलग कर देता

जैसे एक मिस्त्री बल्टू से
नट अलग करता हैं
तुम कहते हो - यह हत्या हो रही है
मैं कहता हूँ - मैकनिजम टूट रहा है।" (32)

धूमिल का आगे कहना है -

"असली सवाल यह जानना
कि बहता हुआ खून क्या कह रहा है
यह हत्याकांड नहीं है सिर्फ लोहे को
एक नया नाम दिया जा रहा है।" (33)

"क्योंकि उसके चारों तरफ चक्कर काटता हुआ
एक पूँजीवादी दिमाग है
जो परिवर्तन तो चाहता हैं
मगर अहिस्ता - अहिस्ता।" (34)

समाज में जो पूँजीवादी या दूसरों का शोषण करनेवाले लोग रहते हैं वे तो सारी दुनिया का चक्कर काट के फिरते हैं। हाँ वे परिवर्तन तो जरुर चाहते हैं परंतु जल्दी से नहीं तो अहिस्ता-अहिस्ता याने की समय बीत जाने के बाद।

धूमिल आगे यह भी कहते हैं कि,

"भूख और भूख की आड में
चबायी गयी चीजों की अक्स
उनके दाँतों पर ढूँढना
बेकार है। समाजवाद
उनकी जुबान पर अपनी सुरक्षा का
एक आधुनिक मुहावरा है।" (35)

धूमिल व्यवस्था के जकडबंदी से इतने निराश और उदास दिखाई देते हैं कि, संभावनाओं के रहते हुए भी कुछ कर पाने की व्यंजना उनकी अभिव्यक्ति में सर्वत्र दिखती हैं। पेट की अपेक्षाओं के सामने कविता आदमी के हाथों में क्रांति कैसे ला सकती हैं।

"इस वक्त जब कि, कान नहीं सुनते हैं कविताएं
कविता पेट से सुनी जा रही है

आदमी गजल नहीं गा रहा है
गजल आदमी को गा रही है।" (36)

निरक्षरता अथवा अशिक्षा और गरीबी के कारण समाज में दलित, शोषित, पीड़ित, उपेक्षित लोगों की चुप बने रहकर सब कुछ सहन करते रहने की मानसिकता को मुँह खोलने के रुप में स्वर देना चाहता हैं।

धूमिल का कहना है जब तक कुछ बोला नहीं जाता, तब तक कुछ सुना भी नहीं जाता। इसीलिए समाज में शोषण उत्पीडन बना रहता हैं जो उठाने के लिए प्रेरणा दे रहा है। वह यद्यपि "मैं और तुम" के माध्यम से रचनाकार स्वयं ही उस वाणी के विधायक है।

अर्थतंत्र की व्याख्या करती हुई धूमिल की कविता वैचारिक सिध्दातों के चलन से नाता जोडती हैं।

धूमिल जनतंत्र के प्रति चाहे जितना अनास्थाभाव भले ही प्रकट कर गया हो, उसने कभी भी जनतंत्र की अपनी समकालिन व्यवस्था का विकल्प साम्यवादी देश की शासन पध्दति को नहीं माना था। वैसे भी जनतंत्र राजनीतिक व्यवस्था है और साम्यवाद आर्थिक व्यवस्था है। साम्यवाद भला ही आर्थिक समता लाने के लिए उत्पादक साधनोंपर श्रमिकों का स्वामित्व और उस स्वामित्व की स्थापना के लिए शासन का अधिकार श्रमिकों के हाथों में सौंपने की विश्वासी हो।

देश की जनता अपनी वर्तमान विषमता की दलदल से बाहर आने के लिए उस वक्त दर्शन को साधन मानती हो। उसकी दृष्टि में उसके प्रति नितांत अलग-अलग धारणाएँ होती हैं। मनुष्य को विवश होकर स्वीकारना पडता हैं कि, उसके "पेशेवर हाथों और फटे हुए जूतों" के बीच एक आदमी का उसे हमेशा ख्याल रहता हैं। उसी आदमी के साथ वह संवेदनशील है। उसी ने उसकी समवेदना भी प्रकट हो जाती हैं। कवि के ही शब्दों में देखिए -

"फिर भी मुझे ख्याल रहता हैं
कि पेशेवर हाथों और फटे हुए जूतों के बीच
कहीं न कहीं एक अदद आदमी है
जिसपर टाँके पडते हैं
जो जूतों से झाँकती हुई अंगुली की चोट छातीपर
हथौडे की तरह सहता हैं।" (37)

परंतु धूमिल कहते हैं जनता विवश है एवं हमारा समाज व्यवस्था धर्मी पूर्जा है। व्यवस्था पूँजीवादी है तो उनकी सामूहिकता आदर्श और यथार्थ स्थापित न कर पाई तभी उसे अहसास होता हैं।

"न मैं कमन्द हूँ
न कवच हूँ
न छंद हूँ
मै बीचो बीच से दब गया हूँ
मैं चारों तरफ से बंद हूँ
मैं जानता हूँ कि, इससे न तो कुर्सी बन सकती हैं
और न बैसाखी।" (38)

इसीप्रकार "राजकमल चौधरी के लिए" कविता में छोटे छोटे वाक्य उसके स्वभाव प्रकृति से साक्षात्कार कराते जान पडते हैं। कथ्य को सामर्थ्य बढाने में शब्दों की पुनरावृत्ति बडी सहायक हुई है। यह "आवृत्ति कई प्रकार की है, जैसे एक शब्द की। यह पुनरावृत्ति से ध्वनति मूर्तित हो उठती हैं। कभी–कभी शब्दों की पुनरावृत्ति अथवा कभी–कभी शब्दों वाक्यविधान की दृष्टि से उलटने–पुलटने अथवा आगे पीछे करने से भी कायनिक क्षमता प्रभावी है।

"हाँ हाँ कवि हूँ
नंगी। और ठंडी। और काली "तीन मुंहवाली" वह
भाषा की रात हैं।" (39)

गांव और शहर का रिश्ता कभी भी आत्मीयता का नहीं रहा। शहर का आदमी सदा से गांववालों को मूर्ख, भोंदू, गंवार न जाने क्या क्या मानता रहा। ग्रामीण की नजर में शहर का आदमी चालबाजी स्वार्थपरता और धूर्तता का पर्याय रहा है। गांवोंकी गरीबीपर शहरों की समृध्दि की नींव पडी है। गांवों की अशिक्षा से शहर की शिक्षा पनपी है। गांव की सरलता को छलकर ही शहर चतुर कहलाया है।

शहर शोषण का प्रतीक है वह गांवों के निर्मम दोहन का प्रतीक रहा है। शहर के लोगों ने धीरी–धीरे सारी कलाओं को अपना गुलाम बना लिया है। गांव की पसीने की कमाई पर ऐश करनेवाले अमीर–उमरांव और रजवाडे कलाओं के संरक्षक बन बैठे।

समाज में व्याप्त किसी प्रकार की विषमता के प्रति उद्‌वेग की भावना किसी भी साधारण समझदार

की स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है। सामाजिक वर्गों में देखी जानेवाली विषमता की बात करें तो मार्क्सवादी चिंतनसे प्रभावित करना कम हास्यापद नहीं होता।

सामाजिक दृष्टि से वर्ग-भेद है और आर्थिक दृष्टि से वर्गों की विषमता भी है। मोचीराम के पास पहुंचनेवाले ग्राहकों के वर्गों के अतिरिक्त एक और वर्ग की कल्पना कुछ आलोचक करते हैं। उनके विचार में ऐसे वर्ग के लोग अपने जूतों के नौकरों हाथ चमकाकर मंगवा लेते हैं वे खुद मोचीराम तक नही पहुंचते। यह वर्ग संभवतः ऐसा संभ्रात और संपन्न भी हो सकता है कि, जूतों की मरम्मत और पालिश करवा कर उन्हें पहनने के बजाय हर समय नये जूते ही खरीदता हो। देश में फैली दरिद्रता की वास्तविकता के प्रति अभिज्ञाता का परिचायक नहीं तो और क्या कहलायेगा।

********** 0 **********

** अध्याय नं.7 **

1.	संसद से सडक तक – धूमिल – शहर का व्याकरण	पृष्ठ 57
2.	कल सुनना मुझे – धूमिल – ओ बैरागी	पृष्ठ 78
3.	संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा	पृष्ठ 126
4.	संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा	पृष्ठ 126
5.	संसद से सडक तक – धूमिल – जनतंत्र के सूर्योदय में	पृष्ठ 12
6.	संसद से सडक तक – धूमिल – उस औरत की बगल नें लेटकर	पृष्ठ 27
7.	संसद से सडक तक – धूमिल – भाषा की रात	पृष्ठ 88
8.	संसद से सडक तक – धूमिल – मोचीराम	पृष्ठ 37
9.	संसद से सडक तक – धूमिल – मोचीराम	पृष्ठ 37
10.	संसद से सडक तक – धूमिल – मोचीराम	पृष्ठ 40
11.	संसद से सडक तक – धूमिल – मोचीराम	पृष्ठ 38
12.	संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा	पृष्ठ 105
13.	संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा	पृष्ठ 127
14.	संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा	पृष्ठ 127
15.	संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा	पृष्ठ 112
16.	संसद से सडक तक – धूमिल – राजकमल चौधरी के लिए	पृष्ठ 31
17.	संसद से सडक तक – धूमिल – मोचीराम	पृष्ठ 40
18.	संसद से सडक तक – धूमिल – प्रौढशिक्षा	पृष्ठ 47
19.	संसद से सडक तक – धूमिल – प्रौढशिक्षा	पृष्ठ 48
20.	सुदामा पांडे का प्रजातंत्र – धूमिल – न्यू गरीब हिंदू होटल	पृष्ठ 20
21.	सुदामा पांडे का प्रजातंत्र – धूमिल – ताजा खबर	पृष्ठ 27
22.	संसद से सडक तक – धूमिल – प्रौढशिक्षा	पृष्ठ 48
23.	सुदामा पांडे का प्रजातंत्र – धूमिल – मुक्ति का रास्ता	पृष्ठ 58
24.	सुदामा पांडे का प्रजातंत्र – धूमिल – मुक्ति का रास्ता	पृष्ठ 58
25.	सुदामा पांडे का प्रजातंत्र – धूमिल – हत्यारे दो	पृष्ठ 70
26.	संसद से सडक तक – धूमिल – कुत्ता	पृष्ठ 71
27.	संसद से सडक तक – धूमिल – मोचीराम	पृष्ठ 37
28.	संसद से सडक तक – धूमिल – मोचीराम	पृष्ठ 38

29.	संसद से सडक तक – धूमिल – मोचीराम	पृष्ठ 40
30.	संसद से सडक तक – धूमिल – मोचीराम	पृष्ठ 40
31.	संसद से सडक तक – धूमिल – मोचीराम	पृष्ठ 41
32.	कल सुनना मुझे – धूमिल – कविता श्री काकुलम्	पृष्ठ 20
33.	कल सुनना मुझे – धूमिल – कविता श्री काकुलम्	पृष्ठ 21
34.	संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा	पृष्ठ 115
35.	संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा	पृष्ठ 126
36.	संसद से सडक तक – धूमिल – कवि 1970	पृष्ठ 61
37.	संसद से सडक तक – धूमिल – मोचीराम	पृष्ठ 37, 38
38.	संसद से सडक तक – धूमिल – शान्तिपाठ	पृष्ठ 25
39.	संसद से सडक तक – धूमिल – भाषा की रात	पृष्ठ 90
40.	विपक्ष का कवि धूमिल – राहुल	पृष्ठ 170